National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2024; 1(55): 228-233
© 2024 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. सुरेश्वर मेहेर
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजधानी महाविद्यालय,
भुवनेश्वर- 751003 (ओड़िशा)

Correspondence:
डॉ. सुरेश्वर मेहेर
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
राजधानी महाविद्यालय,
भुवनेश्वर- 751003 (ओड़िशा)

शिवकारणतावाद : एक समीक्षण

डॉ. सुरेश्वर मेहेर

कूटशब्द : शिव, परमतत्त्व, विमर्श, शैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञा, आभासवाद, स्वातन्त्र्यवाद, कारणतावाद ।

उपक्रम

भारतीय दार्शनिक परम्परा में स्वकीय मौलिक चिन्तन तथा सैद्धन्तिक उपस्थापन द्वारा शैव दर्शन एक विशिष्ट स्थान अधिकृत करता है । भारतीय दर्शन की तीन प्रमुख धाराएँ हैं- वैदिक, अवैदिक एवं आगमिक । आगमिक दर्शन परंपरा की शृंखला में काश्मीर शैव दर्शन का उद्भव व विकास हुआ है । काश्मीर शैव दर्शन मूलतः अद्वैतवादी है अर्थात् एकतत्त्ववाद को समर्थन करता है, जिसमें परमशिव को ही सर्वोच्च सत्ता या परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है । यह दर्शन त्रिक-दर्शन[1] के नाम से भी अभिहित है। इस दर्शन के आधारभूत तीन मुख्य शास्त्र हैं- आगम शास्त्र, स्पन्द शास्त्र एवं प्रत्यभिज्ञा शास्त्र। काश्मीर शैवागमों में मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, स्वच्छन्दतन्त्र, विज्ञानभैरव, नेत्रतन्त्र, स्वायम्भुवतन्त्र, रुद्रयामलतन्त्र, नैश्वासतन्त्र, आनन्दभैरव और उच्छुष्मभैरव, शिवसूत्र मुख्य हैं । स्पन्द शास्त्र काश्मीर शैव दर्शन के साधना पक्ष से सम्बन्धित है। वसुगुप्तकृत स्पन्दकारिका या स्पन्दसूत्र इस दर्शन का मूलभूत ग्रन्थ है। इस स्पन्दकारिका पर स्पन्दनिर्णय, स्पन्दसन्दोह, स्पन्दसर्वस्ववृत्ति, स्पन्दविवृति, स्पन्दप्रदीपिका आदि अनेक टीकाएँ लिखी गयी हैं ।

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र काश्मीर शैव सिद्धान्त का दर्शनशास्त्र है । इसी शास्त्र ने ही सबसे पहले शैवमत का दार्शनिक शैली से विवेचन किया था जिसमें तर्क, वाद-प्रतिवाद का प्रयोग किया गया है। स्पन्द शास्त्र और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के सिद्धान्तों में तत्त्वतः न कोई भेद है और न कोई विरोध । इस शास्त्र का मूल ग्रन्थ सोमानन्द विरचित शिवदृष्टि है । इसमें जिन दार्शनिक सिद्धान्तों की स्थापना की गयी थी उन्हीं की विस्तृत व्याख्या प्रत्यभिज्ञा शास्त्र का मुख्य विषय है। इस दार्शनिक परम्परा में उत्पलदेव की ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-कारिका, अभिनवगुप्तकृत प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, प्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी, तन्त्रालोक, तन्त्रसार, क्षेमराज प्रणीत प्रत्यभिज्ञाहृदय, पराप्रवेशिका, योगराज के द्वारा रचित परमार्थसार, महेश्वरानन्द विरचित महार्थमञ्जरी, राजानक आनन्दकृत षट्त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं जिनमें अद्वैतवादी शैव दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है ।

काश्मीर शैवदर्शन मूलतः एक-कारणतावाद अर्थात् शिवकारणतावाद अथवा एक-तत्त्ववाद के सपक्ष में है जिसमें एकमात्र परमसत्ता शिव से सकल जगत् की रचना का विषय वर्णित है । पुनश्च इसी एक मूल सत्ता से ही 36 तत्त्वों के रूप में विस्तार होकर समग्र विश्व प्रकटित होता है । प्रस्तुत लेख में काश्मीर शैव दर्शन में प्रतिपादित तात्विक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

परमतत्त्व

काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार चित् या परासंवित् (शिव) ही एकमात्र परमतत्त्व और परमकारण है।[2] इसके अतिरिक्त दृश्यमान समस्त विश्व उसी की अभिव्यक्तिमात्र है।

समस्त परिवर्तनशील पदार्थों का निर्विकार रूप चित् या परासंवित् ही है जिसमें अहम् और इदम् का, ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता। यह प्रकाश और विमर्शमय है। काश्मीर शैव दर्शन इसे परमशिव या महेश्वर शब्द से अभिहित करते हैं। यह केवल प्रकाशरूप नहीं है अपितु विमर्शरूप भी है। प्रकाश वह होता है जिसके द्वारा समस्त पदार्थ प्रकाशित होते हैं।

काश्मीर शैव दर्शन ने लौकिक जगत् में दृष्ट सूर्य, हीरा आदि की प्रकाशमयता से परमशिव की प्रकाशमयता का स्पष्ट अन्तर निरूपित करने के लिए वर्णित किया है कि परमतत्त्व प्रकाशमात्र नहीं है, वह विमर्श भी है अर्थात् वह अपना ईक्षण स्वयं करता है। यह अकृत्रिम अर्थात् शुद्ध अहम् का विस्फुरण है। क्षेमराज अपने एक मुख्य ग्रन्थ पराप्रवेशिका में उल्लेख करते हैं- "अकृत्रिमाहं विस्फुरणम्"[3] अर्थात् यह अहम् और इदम् के व्यवधान से शून्य स्व का बोध है। यदि यह विमर्शरूप न होकर प्रकाशमात्र होता तब वह निरीश्वर और जड़ होता। उनके कथन में- "यदि निर्विमर्शः स्यादनीश्वरो जडश्च प्रसज्येत"[4] इस विमर्श के द्वारा ही परमशिव जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार करता है। यह परमशिव तत्त्व स्वयं को चिद्रूपिणी शक्ति के रूप में भी जानता है, यही उसका विमर्श है। यह चित् होने के साथ-साथ चित्शक्ति भी है। यह विश्वोत्तीर्ण भी है और विश्वमय भी है। तन्त्रालोककार अभिनवगुप्त ने इस परमशिव तत्त्व को पूर्ण-स्वभाव के रूप में विवेचित किया है।[5]

परमशिव को किसी अन्य की अपेक्षा ने होने के कारण स्वतन्त्र भी कहा गया है। अभिनवगुप्त के वचन में-

तस्य देवातिदेवस्य परापेक्षा न विद्यते।
परस्य तदपेक्षत्वात्स्वतन्त्रोऽयमतः स्थितः ॥[6]

परमतत्त्व की पञ्च शक्तियाँ

इस परमशिव की अनन्त शक्तियाँ[7] हैं जिनमें से निम्नांकित 5 शक्तियाँ[8] मुख्य हैं-

चित्-शक्ति : यह आत्म-प्रकाशन की शक्ति है जिससे वह सर्वत्र प्रकाशित है।[9] एवं इसी प्रकाशरूप आश्रय में विश्व के समस्त तत्त्वों का प्रकाशन होता है।

आनन्द-शक्ति : यह परमशिव की स्वातन्त्र्य शक्ति है जिससे वह आनन्दमय हो जाता है।[10] वस्तुतः चित् और आनन्द परमशिव का स्वरूप ही है।

इच्छा-शक्ति : परमशिव की सिसृक्षा अर्थात् सर्जन की प्रवृत्ति इच्छा-शक्ति है अर्थात् चिद्रूप परमेश्वर विभिन्न ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेय रूपों में आत्म-अवभासन की इच्छा करता है जो उसका स्वभाव-ऐश्वर्य का चमत्कार है। वह सदाशिव कहलाता है।[11]

ज्ञान-शक्ति : चिदात्मा की इच्छा-शक्ति जब वेद्योन्मुखी होती है तब उसे ज्ञान-शक्ति कहा जाता है।[12] ज्ञान-शक्ति के रूप में परमशिव ईश्वर कहलाता है।

क्रिया-शक्ति : समस्त आकारों को ग्रहण करने की शक्ति क्रिया-शक्ति है।[13] यह सद्विद्या या शुद्धविद्या है।

समस्त विश्व परमशिव की शक्ति का उन्मेष या प्रसरमात्र है, तद्व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जगत् उसी परमशिव की अभिव्यक्ति है। यदि परमशिव में अपने को प्रकट करने की भिन्न-भिन्न रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता न होती तब वह संवित् ही नहीं कहलाता है। यदि महेश्वर एकरूप में रह जाता है तब वह महेश्वरत्व और संवित्त्व का त्याग कर एक जड़ घट के समान हो जाता है।

अस्थास्यदेकरूपेण वपुषा चेन्महेश्वरः।
महेश्वरत्वं संवित्त्वं तदत्यक्षद् घटादिवत् ॥[14]

पुनश्च जिस प्रकार एक बृहद् वटवृक्ष अपने बीज में शक्तिरूप में विद्यमान रहता है उसी प्रकार चराचर विश्व परमशिव के विमर्श में शक्तिरूप में स्थित रहता है। यही विमर्श उसकी स्वातन्त्र्य या अबाधित शक्ति है। परमशिव में समस्त विश्व के शक्तिरूप में विद्यमान रहने की स्थिति को मयूराण्डरस के उदाहरण से भी समझा जा सकता है। जिस प्रकार मयूर अपने समस्त चित्रित रूप के साथ मयूराण्डरस में संभाव्यता के रूप में विद्यमान रहता है उसी प्रकार समस्त विश्व परमेश्वर की स्वातन्त्र्य शक्ति में विद्यमान रहता है।[15]

सृष्टि के 36 तत्त्व

परमशिव विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय है। उसकी सर्जनात्मक विश्वमयता ही शिवतत्त्व है। अतः परमशिव की सृष्टि के 36 तत्त्वों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है-

शिवतत्त्व – यह सर्वोत्कृष्ट तत्त्व चैतन्य रूप है। इसे परमेश्वर, परा संवित् या शिव आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता है। यह तत्त्व संसार के प्रत्येक जड़ और चेतन में मुख्य रूप से विद्यमान है। यह नित्य और अनन्त है। यह समस्त विश्व में व्यापक रूप में है और विश्वातीत भी है। प्रकाश और विमर्श के स्वातन्त्र्य-रूप से भासमान होने के कारण यह शिव-तत्त्व कहा जाता है।[16] यह प्रकाश का विमर्श (बोध), उसके शिवरूप की अभिव्यक्ति है; एवं विमर्श का प्रकाश (अभिव्यक्ति) उसके शक्ति स्वरूप की।[17] परमशिव का एक पर्याय अनुत्तर भी है। वह अनुत्तर परमशिव जब अपनी इच्छा से इस अखिल विश्व के सर्जन के लिए स्पन्दमान हुआ तब उसका वह प्रथम स्पन्द ही परमशिव को जानने वालों द्वारा शिव तत्त्व नाम से अभिहित हुआ।

यदयमनुत्तरमूर्त्तिर्निजेच्छयाऽखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्दः प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः॥[18]

शक्ति तत्त्व– शक्ति शिव से भिन्न नहीं है। वह शिव की सर्जनोन्मुखतामात्र है। शिव ही अपने हृदय से इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपी त्रिकोण के माधुर्य से परिवर्धित उल्लास द्वारा स्वयं में स्थित विश्व को ईक्षण करने के लिए जब उन्मुख होता है तब वही शिव शक्तिस्वभाव वाला कहलाता है। महेश्वरानन्द ने अपने प्रमुख ग्रन्थ महार्थमञ्जरी में उल्लेख किया है-

स एक विश्वमेषितुं ज्ञातुं कर्तुं चोन्मुखो भवन्।
शक्तिस्वभावः कथितो हृदयत्रिकोणमधुमांसलोल्लासः ॥[19]

जब शिव अपने हृदय में बीजरूप में विद्यमान अर्थतत्त्व को बाहर प्रकट करने के लिए उन्मुख होता है तब वह शक्ति के रूप में कथित होता है। शक्ति चित् की क्रियाशीलता है।

काश्मीर शैव दर्शन में शिव को एक महान कलाकार के रूप में भी प्रदर्शित किया गया है। जिस प्रकार एक कलाकार अपने हृदय में विद्यमान आनन्द को हृदय में ही छिपाकर नहीं रख सकता, वह उसे गीत, कविता या चित्र के रूप में अभिव्यक्त कर देता है, उसी प्रकार विश्व का सर्वोच्च कलाकार यह परमशिव अपने आनन्द को सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त कर देता है। शिव की शक्ति ही आनन्द से उच्छलित होकर सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त होती है। अतः समग्र सृष्टि स्वयं शिव की ही बाह्याभिव्यक्ति है।[20] शिव और शक्ति पृथक् नहीं रह सकते। शिव ईक्षिता के रूप में और शक्ति आनन्द के रूप में परस्पर संयुक्त रहते हैं।

सदाशिव तत्त्व - इदम् के रूप में प्रतिज्ञापक की इच्छा ही सदाशिव तत्त्व है। इस अवस्था में इच्छा का प्राधान्य रहता है। सत् का अर्थ है होना और होने में इदम् अस्फुटतया विद्यमान रहता है। 'मैं क्या हूँ, के उत्तर में 'मैं यह हूँ'। इस प्रकार 'अहम् इदम्' का जो अनुभव है उसमें 'अहम्' मुख्य है और 'इदम्' अस्फुट है। इस अवस्था में जगत् अस्फुट इदम् मात्र है। जिस प्रकार चित्र बनाने से पूर्व एक चित्रकार के मन में चित्र अस्फुट रूप में विद्यमान रहता है उसी प्रकार सदाशिव में यह विश्व (इदम्) अस्फुट रूप में विद्यमान रहता है। सदाशिव तत्त्व में इदन्ता रूप विश्व अहंता से आच्छादित रहता है। सृष्टि के विकास में यह सदाशिव प्रथम तत्त्व है जिससे सत् का ज्ञान होता है।[21]

ईश्वर तत्त्व– यह परमेश्वर की वह अवस्था है जिसमें 'इदम्' अंश अधिक स्फुट हो जाता है। इसमें ज्ञान का प्राधान्य रहता है। समस्त वेद्य ज्ञान-शक्ति के उद्रेक के कारण अधिक स्फुट होता है। सदाशिव की अवस्था में अस्फुटतया विद्यमान विश्व ईश्वर की अवस्था में अधिक स्फुट हो जाता है। सदाशिव की अवस्था में 'अहम् इदम्' इस प्रकार का परामर्श होता है और ईश्वर की अवस्था में 'इदम् अहम्' इस प्रकार का परामर्श होता है।[22] तात्पर्य यह है कि सदाशिव की अवस्था में जो 'इदम्' अस्फुट था वह ईश्वर की अवस्था में अधिक स्फुट एवं प्रधान हो जाता है।

सद्विद्या या शुद्धविद्या तत्त्व– इस अवस्था में क्रियाशक्ति का प्राधान्य होता है। 'अहम्' और 'इदम्' का परामर्श समान रूप से होता है तथापि दोनों की पृथक्-पृथक् स्थिति प्रतीत होती है। अतः इस अवस्था का अनुभव भेदाभेद-विमर्शनात्मक होता है। सद्विद्या की इस दशा को परापर दशा कहते हैं, चूँकि इस अवस्था में पदार्थों के वास्तविक सम्बन्धों का परामर्श होता है। अतः यह 'सद्विद्या' या 'शुद्धविद्या' कहलाती है।

माया तत्त्व एवं पँच कञ्चुक – शिव तत्त्व से लेकर शुद्धविद्या तत्त्व पर्यन्त यह पाँच 'शुद्धाध्वा' कहलाता है क्योंकि यहाँ तक महेश्वर के स्वरूप का गोपन नहीं होता है। माया-तत्त्व वह है जिसमें आकर महेश्वर का स्वरूप गोपन होता है। यह माया परमेश्वर की स्वातन्त्र्य इच्छा शक्ति है जो भेद-दशा का अवभासन करने के कारण माया-शक्ति कहलाती है।[23] यही माया अपने पाँच कंचुकों के द्वारा महेश्वर के स्वरूप को गोपन कर अहम को इदम् और इदम् को अहम् से पृथक् कर भेद उत्पन्न करती है। माया आत्मा पर आवरण डालकर भेदबुद्धि उत्पन्न करती है। कला[24], विद्या[25], राग[26], काल[27] और नियति[28] ये पाँच माया के कंचुक हैं।

पुरुष – माया के पाँच कंचुकों से शिव का सार्वभौम ज्ञान एवं ऐश्वर्य जब संकुचित हो जाता है तब वह परिमित हो जाता है और शिव की इस अवस्था को शैव दार्शनिक 'पुरुष' शब्द से अभिहित करते हैं। पूर्ण-शिव से परिमित हो जाने के कारण यह पुरुष अणु कहलाता है।[29]

प्रकृति - सद्विद्या की अवस्था में 'अहं च' और 'इदं च' की जो अनुभूति होती है उसमें से 'अहम्' अंश की अभिव्यक्ति पुरुष है और 'इदम्' अंश की अभिव्यक्ति प्रकृति है। पुरुष वेदक है और प्रकृति केवल वेद्य है।[30] वह सत्त्व, रजस् तथा तमस् की साम्यावस्था है किन्तु शैव दर्शन की यह प्रकृति सांख्य दर्शन की प्रकृति से इस अंश में भिन्न है कि सांख्य के अनुसार प्रकृति एक है किन्तु शैव दर्शन के अनुसार प्रत्येक पुरुष की प्रकृति भिन्न है। यह शिव की सान्ता शक्ति है और इसके तीन गुण शिव की ज्ञान-शक्ति, इच्छा-शक्ति व क्रिया-शक्ति के स्थूल रूप हैं।

बुद्धि, अहंकार व मन – बुद्धि, अहंकार और मन अन्तःकरण हैं। अन्तःकरण का अर्थ है आन्तरिक साधन। बुद्धि प्रकृति का प्रथम तत्त्व है। यह निश्चयात्मिका है एवं इसके द्वारा दो प्रकार के अनुभव होते हैं। (i) बाह्य अनुभव जो इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य होता है, जैसे- घट, पट आदि। (ii) आन्तरिक अनुभव जो संस्कारों द्वारा उद्बुद्ध है। अहं प्रतीति जिसके द्वारा होती है वह अहंकार है। इसके कारण ही ग्राह्य या वेद्य वस्तु अभिमत होते हैं अर्थात् वे अपने माने जाते हैं। बुद्धि तत्त्व प्रकृति का परिणाम है और अहंकार बुद्धि का परिणाम। मनस्तत्त्व अहंकार परिणाम है। संकल्प और विकल्प करना मन का कार्य है। इन्द्रियों के सहयोग से यह प्रत्यक्ष का अनुभव करता है।

पँच ज्ञानेद्रियां – पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ या बुद्धीन्द्रियाँ अहंकार के परिणाम हैं। घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके द्वारा क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द के ज्ञान होते हैं।

पँच कर्मेद्रियां – पञ्च कर्मेन्द्रियाँ भी अहंकार के परिणाम हैं। वे हैं- वागिन्द्रिय, हस्तेन्द्रिय, पादेन्द्रिय, पायु एवं उपस्थ इन्द्रियाँ। इनके द्वारा क्रमशः वाणि, ग्रहण, विहरण, मलत्याग एवं आनन्दरूप क्रिया संपन्न होती हैं। ये सभी इन्द्रियाँ शक्तियाँ हैं जो भिन्न इन्द्रियावयवों द्वारा अपना कार्य करती हैं।

पँच तन्मात्र – पञ्च तन्मात्र भी अहंकार के परिणाम हैं जो इस प्रकार हैं – शब्द तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र, रूप तन्मात्र, रस तन्मात्र एवं गन्ध तन्मात्र।

पँच महाभूत – पञ्च महाभूत पञ्च तन्मात्रों के परिणाम हैं । शब्द तन्मात्र का परिणाम आकाश है, स्पर्श तन्मात्र का परिणाम वायु, रूप तन्मात्र का परिणाम अग्नि, रस तन्मात्र का परिणाम जल एवं गन्ध तन्मात्र का परिणाम पृथिवी है ।

इस प्रकार शिव तत्त्व से लेकर पृथिवी तक ये सृष्टि के 36 तत्त्व परमशिव की ही अभिव्यक्ति है ।

पुनश्च काश्मीर शैवदर्शन में मुख्यतः दो प्रकार के सिद्धान्त का विवेचन प्रस्तुत किया गया है । एक है स्वातन्त्र्यवाद और दूसरा है आभासवाद जिनका वर्णन किया जा रहा है ।

स्वातन्त्र्यवाद

इच्छा की निरपेक्ष पूर्णप्रभुता अथवा स्वातन्त्र्य चित् का स्वभाव है । यह स्वभाव-स्वातन्त्र्य ही परमशिव की सत्ता का प्रमाण है[31] एवं शिव की इच्छा ही सृष्टि के रूप में सदैव प्रकाशित होती रहती है । यह शक्ति स्वतन्त्र इसलिए है कि यह किसी बाह्य उपादान या उपकरण पर आश्रित नहीं है । यह कुछ भी करने में स्वतन्त्र है और देश-काल तथा कारण आदि की सीमा से परे है । यह स्वातन्त्र्य परमात्मा का ऐश्वर्य है । अभिनवगुप्त के कथन में-

चितिः प्रत्यवमर्शात्मा परावाक् स्वरसोदिता ।
स्वातन्त्र्यमेतन्मुख्यं तदैश्वर्यं परमात्मनः ॥[32]

स्वातन्त्र्य की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा गया है – अपनी इच्छा के अनुसार बिना किसी अवरोध के सब कुछ करने का सामर्थ्य ही स्वातन्त्र्य है ।[33] अभिनवगुप्त ने स्वातन्त्र्य का महत्व प्रस्तुत करते हुए कहा है कि प्रकाश-विमर्श-स्वरूप संवित् स्वभाव वाले परमशिव स्वातन्त्र्य के माहात्म्य से ही रुद्र से लेकर स्थावर पर्यन्त प्रमाता के रूप में नील, सुख आदि प्रमेय के रूप में प्रकट होता है । ये प्रमाता और प्रमेय उस परमशिव से अभिन्न होते हुए भी भिन्न के भाँति भासित होते हैं; किन्तु ये उसके स्वरूप को कभी आच्छादित नहीं कर सकते ।[34] इस प्रकार काश्मीर शैव दर्शन में स्वातन्त्र्यवाद का प्रस्तुतीकरण किया गया है ।

आभासवाद

काश्मीर शैव दर्शन में महेश्वर की सृष्टि की दृष्टि से एक ओर स्वातन्त्र्यवाद है, तो दूसरी ओर जगत् की अभिव्यक्ति की दृष्टि से आभासवाद है । काश्मीर शैव दर्शन के इस प्रमुख सिद्धान्त के अनुसार शिव ही जगत् के रूप में आभासित होता है । परमशिव अपने परमस्वरूप में अवस्थित रहते हुए ही अनेक रूपों में आत्मावभासन करता है ।

नानाभावैः स्वमात्मानं जानन्नास्ते स्वयं शिवः ।
चिद्व्रतिरूपकं नानाभेदभिन्नमनन्तकम् ॥[35]

अपने को सृष्टि के रूप में आभासित या अभिव्यक्त करना शिव का स्वभाव है, न कि बाध्यता । एवं यह सृष्टि शिव अपने आनन्द के लिए करता है । जिस प्रकार मयूराण्डरस में समग्र सौन्दर्य के साथ चित्र-विचित्र मयूर अभिन्न रूप से विद्यमान रहता है उसी प्रकार समग्र विश्व महेश्वर में विद्यमान रहता है ।[36] चित् या संवित् ही जगत् का अधिष्ठान है । अनेक रूपों में आभासित परिवर्तनशील यह जगत् उस चित्र का ही आभास या अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबम्बित विभिन्न आकार दर्पण से अभिन्न हैं, उसी प्रकार परमशिव के विमल संवित् रूपी दर्पण में भिन्न-भिन्नतया भासित यह विश्व भी परमशिव से अभिन्न है। जिस प्रकार चित्र-विचित्र पदार्थ दर्पण में प्रकट होते हैं उसी प्रकार परम-संवित् में जगत् प्रकट होता है।[37] अन्तर उतना ही है कि परम-संवित् को विमर्श-शक्ति के द्वारा उसका बोध रहता है। किन्तु दर्पण में उस प्रकार अपने में प्रतिबिम्बित पदार्थ का बोध नहीं रहता। आभास महेश्वर की कल्पनाओं का बहिःप्रक्षेपमात्र है । अन्तःस्थित कल्पनाओं को बाहर आभासित कर देना ही परमशिव की सृष्टि है ।[38] स्वयं शिव ही प्रमाता एवं प्रमेयों के रूप में आभासित होता है । इस प्रकार काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार सृष्टि एकमेव कारणसत्ता परमशिव का आभास मात्र है ।

काश्मीर शैव दर्शन ने अपनी ज्ञान-परिधि के अनुरूप तात्त्विक विषयों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है । परन्तु उक्त वर्णित विषय कहाँ तक सटीक व यथार्थता की कसौटी पर परिपक्व साबित हो पा रहे हैं या नहीं, उसका एक मूल्याङ्कन अथवा समीक्षण करना अपेक्षित है ।

समीक्षण

1) काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार परम संवित् परमशिव ही जगत् का परम कारण है । यह दृश्यमान समग्र संसार परमशिव का आभासमात्र है । आभासवाद को प्रकट करते हुए इस दर्शन में वर्णित किया गया है कि जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबम्बित विभिन्न आकार दर्पण से अभिन्न हैं, उसी प्रकार परमशिव के विमल संवित् रूपी दर्पण में भिन्न-भिन्नतया भासित यह विश्व भी परमशिव से अभिन्न है । जिस प्रकार चित्र-विचित्र पदार्थ दर्पण में प्रकट होते हैं उसी प्रकार परम-संवित् में जगत् प्रकट होता है ।

यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि आभासवाद अथवा प्रतिबिम्बवाद को घटित होने के लिए भी दो वस्तु का होना आवश्यक है । यदि सिर्फ एक ही परमशिव तत्त्व संसार में अवस्थित है तो किसका प्रतिबिम्ब किसके ऊपर पड़ेगा? और किसको वह आभास होगा? आधुनिक विज्ञान एवं आध्यात्मिक विज्ञान इस सन्दर्भ में प्रतिपादित करते हैं कि समग्र विश्व ऊर्जामय है, किन्तु ऊर्जाएँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं । भौतिक संसार जड़ ऊर्जामय है, एवं गतिशील प्राणियाँ चैतन्य ऊर्जायुक्त हैं । यद्यपि समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड चैतन्य व जड़ ऊर्जाओं से ही परिव्याप्त है, किन्तु सब कुछ चैतन्य शिवमय कह देना अर्थात् जड़-चेतन तत्त्व का भेद नष्ट कर देना - विवेकसंगत तथ्य नहीं है ।

3) पुनश्च इस दर्शन के अनुसार अपने को सृष्टि के रूप में आभासित या अभिव्यक्त करना शिव का स्वभाव है एवं यह सृष्टि शिव अपने आनन्द के लिए करता है । यदि शिव अपने आनन्द के लिए जगत् के रूप में अभिव्यक्त होता है तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या वह आनन्दस्वरूप में स्थित नहीं है जो आनन्द के लिए उसको अभिव्यक्त या आभासित करना पड़ रहा है? लेकिन यह परमसत्ता के लिए उचित कथन नहीं है ।

4) अन्य एक दृष्टान्त के माध्यम से जो बात प्रस्तुत की गई है कि जिस प्रकार मयूराण्डरस में समग्र सौन्दर्य के साथ चित्र-विचित्र मयूर अभिन्न रूप से विद्यमान रहता है उसी प्रकार समग्र विश्व महेश्वर में विद्यमान रहता है, तर्क के विरुद्ध है । मयूर और मयूराण्डरस दोनों भिन्न-भिन्न हैं, एक चेतन, दूसरा अचेतन। मयूराण्डरस चित्र-विचित्र मयूर के शरीर के रूप में अभिव्यक्त होता है, न कि जीवित मयूर के अन्दर स्थित चेतना या आत्मा ।

5) पुनश्च इस दर्शन द्वारा प्रतिपादित स्वातन्त्र्यवाद का खण्डन करने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि इस दृश्यमान संसार में अनेक चेतन प्राणियाँ, अचेतन वस्तुएँ अवस्थान करते हैं जो वास्तविक हैं। मनुष्य स्व-इच्छा से अनेक कार्य संपादित करता है। अन्य प्राणियाँ भी स्वीय इच्छानुकूल ही कार्य करते हैं । इसमें केवल शिव को स्वतन्त्र मानकर उसकी स्वातन्त्र्य-शक्ति के कारण भिन्न-भिन्न रूप में अभिव्यक्त हो जाना- नितान्त निर्दुष्ट नहीं प्रतीत होता है।

6) वास्तवतः अद्वैतवेदान्त दर्शन के समान ही काश्मीर शैव दर्शन भी चेतन और अचेतन तत्त्व के मध्य कोई अन्तर नहीं दर्शन कर पा रहा है । अद्वैतवेदान्त पारमार्थिक रूप से जगत् को मिथ्या या प्रतीतिमात्र स्वीकार करता है, यद्यपि वह जगत् की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार करता है । किन्तु काश्मीर शैव दर्शन तो जगत् को पूर्णतया आभासमात्र ही स्वीकार करता है, सब कुछ चैतन्य शिवमय या शिवरूप । जड़-चेतन सभी एक ही हैं । अर्थात् भौतिकवाद तथा अध्यात्मवाद में कोई अन्तर नहीं है । किन्तु व्यावहारिकतया यह प्रश्न समुत्थित होता है कि जो काश्मीर शैव दर्शन के साधना करने वाले व्यक्ति हैं वो किसकी साधना करेंगे? कौन किसका ध्यान करेगा? माता-पिता, भाई-बहन आदि जो सम्बन्धी हैं, उनके बीच क्या सम्बन्ध बनेगा? क्या कोई व्यक्ति या शैव दार्शनिक स्वयं परमशिव हैं? और वे ही क्या जगत् के रूप में आभासित हो सकते हैं? व्यावहारिक व वास्तविक जगत् के लिए उत्पन्न इस प्रकार के प्रश्नों से काश्मीर शैव दार्शनिकों की केवल शिवकारणतावादी व्याख्या पद्धति समीचीन प्रतीत नहीं होती ।

निष्कर्ष

काश्मीर शैव दर्शन में विश्लेषित उपर्युक्त विषयों का अनुध्यान करने पर यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि एकमात्र परमकारण शिव से ही समस्त जगत् का अवभासन होना एवं पुनश्च उसी का ही जड़-चेतन रूप से दृष्टिगोचर होना - किसी भी व्यक्ति चाहे वह विद्वान् हो अथवा साधारण मनुष्य हो, उसकी बुद्धि द्वारा ग्राह्य नहीं हो सकता है । यतोहि तर्कपूर्ण व युक्तिसंगत प्रमाण के आधार पर सिर्फ वाक्प्रलाप की तरह अपनी दार्शनिक बातों को सर्वसमक्ष रखने का प्रयास तर्क-बुद्धि और जीवन के दैनिक अनुभव की कसौटी पर कदापि नहीं टिकता है । अतः दर्शन की दर्शनता तब सफलीभूत होती है जब वह व्यावहारिक दृष्टिकोण को भी चरितार्थ करे, अन्यथा वह दर्शन दर्शन के क्षेत्र की मर्यादा के विरुद्ध प्रतीत होता है । इसी आधार पर काश्मीर शैवदर्शन द्वारा प्रतिपादित शिवकारणतावाद सिद्धान्त तर्क तथा अनुभव की प्रामाणिक कसौटी पर सिद्ध नहीं हो पा रहा है।

पाद टीका

[1] तच्च (त्रिकशास्त्रं) सिद्धानामकमालिन्याख्यखण्डत्रयात्मकत्वात्त्रिविधम्।
तन्त्रा. भाग. 1. पृष्ठ. 49

[2] शिवः परमकारणम् । तन्त्रा. आ. 1.88

[3] परा. पृष्ठ. 2

[4] वही.

[5] तावान्पूर्णस्वभावोऽसौ परमः शिव उच्यते। तन्त्रा.1.58-59,पृष्ठ.109

[6] वही.

[7] शक्तयश्च अस्य असंख्येयाः । तन्त्र. आ. 4, पृष्ठ. 28

[8] परमेश्वरः पञ्चभिः शक्तिभिः निर्भरः । तन्त्र. पृष्ठ. 73

[9] प्रकाशात्मा प्रकाश्योऽर्थो । ई.प्रत्य. भाग. 1, 1.5.3

[10] स्वातन्त्र्यम् आनन्दशक्तिः । तन्त्र. आ. 1, पृष्ठ. 6

[11] तच्चमत्कार इच्छाशक्तिः । वही.

[12] आमर्शात्मकता ज्ञानशक्तिः । वही.

[13] सर्वाकारयोगित्वं क्रियाशक्तिः । तन्त्र. आ. 1, पृष्ठ. 6

[14] तन्त्रा. 3.100, पृष्ठ. 403

[15] एवं देहे बाह्ये च सवत्र अस्य मयूराण्डरसवद् अविभक्तैव प्रतिपत्तिर्भवति । तन्त्रा. टीका. 3.101, पृष्ठ. 405

[16] ई.प्रत्य.वि. भाग-2, पृष्ठ. 190

[17] अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघनःशिवः।
शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्म-नोऽनन्यरूपया॥ अनु.प्र.पंचा. कारिका.1

[18] षट्त्रिंशत्. श्लोक. 1, पृष्ठ. 1

[19] महार्थ. पृष्ठ. 40

[20] आनन्दोच्छलिता शक्तिः सृजत्यात्मानमात्मना॥ शि.दृ. आ. 111

[21] ई.प्रत्य.वि. भाग. 2, पृष्ठ. 191

[22] भावराशौ पुनः स्फुटीभूते तदधिकरणे एवेदमंशे यदाहमंशं निषिञ्चति तदा ज्ञानशक्तिप्रधानमीश्वरतत्त्वम्- इदमहमिति।
तन्त्रा. टीका. भाग. 6, पृष्ठ. 50

[23] परमेश्वरस्य भेदावभासने स्वातन्त्र्यं तदेवाव्यतिरेकिणी अपूर्णता-प्रथनेन मीनाति हिनस्ति इति मायाशक्तिः उच्यते ॥
माया स्वरूपगोपनात्मिका पारमेश्वरी इच्छाशक्तिः।
तन्त्रा. टीका. भाग. 3, पृष्ठ. 283

[24] किञ्चित्कतृत्वोपोद्बलनमयी कला । ई.प्रत्य.वि. भाग. 2, पृष्ठ. 208

[25] किञ्चिज्ज्ञत्वोन्मीलनरूपा विद्या । वही.

[26] गुणारोपणमयी आसक्तिः रागः । वही. पृष्ठ. 209

[27] सेयमित्थंभूताभासवैचित्र्यप्रथनशक्तिः भगवतः कालशक्तिरित्युच्यते।
वही. पृष्ठ. 13

[28] नियतिर्ममेदं कर्तव्यं नेदं कर्तव्यमिति नियमनहेतुः । परा. पृष्ठ. 9

[29] इदमेव च पञ्चविंशपुंस्तत्त्वमित्युच्यते, यत् श्रीपूर्वशास्त्रेषु पुमानिति, अणुरिति पुद्गलमिति चोक्तम् । तन्त्रा. टीका. भाग. 6, पृष्ठ. 165

[30] तन्त्रा. भाग. 6, 9.294

[31] ई.प्रत्य. आ. 1.4

[32] ई.प्रत्य.वि. 1, पृष्ठ. 20

[33] स्वातन्त्र्यं च नाम यथेच्छं तत्रेच्छाप्रसरस्य अविघातः।
ई.प्रत्य.वि.1.1

[34] तस्मादनपह्नवनीयः प्रकाशविमर्शात्मा संवित्स्वभावः परमशिवो भगवान् स्वातन्त्र्यादेव रुद्रादिस्थावरान्तप्रमातृरूपतया नीलसुखा-दिप्रमेरूपतया च अनतिरिक्तयापि अतिरिक्तया इव स्वरूपानाच्छा-दिकया संविद्रूपनान्तरीयक-स्वातन्त्र्यमहिम्ना प्रकाश इति अयं स्वातन्त्र्यवादः प्रोन्मीलितः । ई.प्रत्य.वि. पृष्ठ. 9

[35] शि.दृ. आ. 109

[36] एवं देहे बाह्ये च सवत्र अस्य मयूराण्डरसवद् अविभक्तैव प्रतिपत्तिर्भवति । तन्त्रा. टीका. 3.101, पृष्ठ. 405

[37] आभासरूपा एव जडचेतनपदार्थाः । ई.प्रत्य.वि. 3.2.11,
निर्मले मुकुरे यद्वद् भान्ति भूमिजलादयः।
अमिश्रास्तद्वदेक स्मिंश्चिन्नाथे विश्ववृत्तयः ।
सदृशं भाति नयनदर्पणाम्बरवारिषु ।
तथाहि निर्मले रूपे रूपमेवावभासते ॥ तन्त्रा. पृष्ठ. 276

[38] चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद् बहिः।
योगीव निरुपादानर्थजातं प्रकाशयेत् ॥ ई.प्रत्य. 3.3

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. अभिनवगुप्त, तन्त्रालोक, जयरथकृत टीकासहित, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर
2. अभिनवगुप्त,ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग1-2(कारिका-टीका), काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1921
3. सोमानन्द, शिवदृष्टि, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर
4. क्षेमराज, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, अनु. विशाल प्रसाद त्रिपाठी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969
5. अभिनवगुप्त, तन्त्रसार, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर
6. महेश्वरानन्द, महार्थमञ्जरी, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर
7. क्षेमराज, पराप्रवेशिका,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
8. राजानक आनन्द, षट्त्रिंशत्तत्त्वसंदोह, टीकासहित, संपा. मुकुन्द राम शास्त्री, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर
9. शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन : आलोचना और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2004
10. शर्मा, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की चिन्तनधारा, चौखम्भा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2008
11. द्विवेदी, श्यामाकान्त, काश्मीरीय शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र, शिवसूत्र, स्पन्दसूत्र एवं शक्तिसूत्र समन्वित, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009
12. द्विवेदी, विजय शंकर, सांख्य एवं काश्मीर शैव दर्शन में सृष्टि, प्रशान्त प्रकाशन, वाराणसी, 1997
13. शास्त्री, विजय पाल, त्रिक दर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली,1996